ानग्गोपांनेपद

रायबहादुर बा

अकिशोर प्रेस में मु

श्रीगणेशाय नमः ।

आदौ मङ्गलाचरणम्

वन्दे शैलसुतापतिं भयहरं मोक्षप्रदं प्राणिनां
मोहध्वान्तसमूहभञ्जनविधौ प्राभास्करं चान्वहम् ।
यद्बोधोदयमात्रतः प्रविलयं विघ्नस्य शैलत्रजा
यान्त्येवाखिलसिद्धयः प्रतिदिनं चाद्यन्तहीनं परम् ॥ १ ॥
यं ध्यायन्ति मुनीश्वराः प्रतिदिनं संयम्य सर्वेन्द्रिया-
एयर्वाक्तीर्थजलाभिषिक्तशिरसा नित्यक्रियानिर्वृताः ।
षट्चक्रादिविचारसारकुशला नन्दन्ति योगीश्वराः
तं वन्दे परमात्मरूपमनघं विश्वेश्वरं ज्ञानदम् ॥ २ ॥

दो०—करों वन्दना ब्रह्म को, जो अनन्त निजरूप ।
जेहि जाने जगभ्रम सकल मिटै अन्ध तमकूप ॥
नाम रूप जामें नहीं, नहीं जाति अरु भेद ।
सो मैं पूरण ब्रह्म हूं रहित त्रिविध परिच्छेद ॥
ब्रह्मभाग जो उपनिषद, ताको करूं विचार ।
भाषा में तिस अर्थ को, लखै सकल संसार ॥
सन्त संग से जो लख्यो, सो मैं करूं बखान ।
परमानन्द सहाय ते, जाने सकल जहान ॥
पुरी अयोध्या के निकट अकबरपुर है गांव ।
जन्मभूमि मम जान तू, जालिमसिंहहि नांव ॥

यह संसार असार महाअपार समुद्र है, इसके पार होने के लिये उपनिषत् अद्भुत अलौकिक अद्वितीय नौका है, जिसमें बैठकर असंख्य

सज्जन मुमुक्षुजन विना प्रयास ही ऐसे दुस्तरसागर के पार होगये हैं, और होते जाते हैं, और भविष्यत्काल में होंगे, जो मुमुक्षुजन हैं, उनके हितार्थ यह भाषाटीका रची गई है, इस टीका में पहिले मूल मन्त्र है, फिर पदच्छेद है, फिर वामहस्त की ओर संस्कृत अन्वय दिया है, और दक्षिण हस्त की ओर पदार्थसहित भाषार्थ लिखा है, यदि वाम तरफ का लिखा हुआ ऊपर से नीचे तक पढ़ा जावे तो उत्तम संस्कृत मिलेगा और यदि दक्षिण हस्त के तरफवाला पढ़ा जावे तो पूरा अर्थ मन्त्र का मध्यदेशीय भाषा में मिलेगा, और यदि बायें तरफ से दहिने तरफ को पढ़ा जावे तो हर एक संस्कृत पद का अर्थ भाषा में मिलेगा, जहांतक होसका है, प्रत्येक संस्कृतपद का अर्थ विभक्ति के अनुसार लिखा गया है, इस टीका के पढ़ने से संस्कृत विद्या का भी अभ्यास होगा, इस टीका में मूल का कोई शब्द छूटने नहीं पाया है, और मन्त्र का पूरा २ अर्थ उसीके शब्दों ही से सिद्ध किया गया है, अपनी कल्पना कुछ नहीं कीगई है, हां कहीं कहीं ऊपर से संस्कृतपद मन्त्र के अर्थ स्पष्ट करने के लिये रखा गया है, और उस पद के प्रथम यह+चिह्न लगा दिया गया है ताकि पाठकजनों को विदित होजावे कि यह पद मूल का नहीं है, इस टीका को बाबू जालिमसिंह निवासी ग्राम अकबरपुर जिला फ़ैजाबाद पोस्टमास्टर जनरल ग्वालियर, सहित अत्यंत सहायता पण्डित गङ्गादत्त ज्योतिर्विद् निवासी मुरादाबादाभिधपत्तन और पण्डित रामदत्त ज्योतिर्विद् निवासी अल्मोड़ाख्य नगर के रचकर शुद्ध निर्मल हृदयाकाशवान् पुरुषों के चरणकमल में अर्पण करता है, और आशा रखता है कि जहां कहीं अशुद्धता हो उससे टीकाकर्ता को सूचना करें ताकि अशुद्धता दूर होजावे ॥

ऐतरेयोपनिषद् सटीक।

मूलम्।

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजाइति ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

आत्मा, वै, इदम्, एकः, एव, अग्रे, आसीत्, न, अन्यत्, किञ्चन, मिषत् सः, ईक्षत, लोकान् नु, सृजै, इति ॥

अन्वयः।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ।
वै	निश्चय करके
इदम्	यह नामरूपात्मक
+जगत्	जगत्
एकः	एक
आत्मा	आत्मा
एव	ही
अग्रे	सृष्टि से पूर्व
आसीत्	विद्यमान था
+च	और
अन्यत्	आत्मा से इतर
मिषत्	चैतन्य
किञ्चन	कुछ
न	नहीं था
नु	और
लोकान्	लोकों को अर्थात् पञ्चभूतों को
सृजै	मैं सृजूँ
इति	ऐसा
सः	वह आत्मा
ईक्षत	विचार करता भया॥

भावार्थ।

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चातिविषयानिह।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्तितः॥ १ ॥

जो संपूर्ण शरीरों में व्यापक होकरके रहै, और जो उपाधिविशिष्ट

होकर पदार्थों को ग्रहण करे, और जो विषयों को भोगै, और जिसका निरंतर भाव बना रहै, उसी का नाम आत्मा है, ऐसा स्मृति ने आत्मा का लक्षण किया है सो यह आत्मा दो प्रकार का है, एक तो व्यवहार-विशिष्ट है, जिसको जीवात्मा भी कहते हैं, दूसरा व्यवहार से रहित है, जिसका नाम परब्रह्म है, व्यवहार तीन प्रकार का है, जाग्रत् का व्यवहार, स्वप्न का व्यवहार, सुषुप्ति का व्यवहार, सुषुप्ति में यह जीव अपनी उपाधि से रहित होकर परमानंदरूप ब्रह्म आत्मा को प्राप्त होजाता है, इसलिये जीव को भी आत्मा कहा है, यह लक्षण व्यवहारविशिष्ट आत्मा का स्मृति ने किया है कैवल्योपनिषद् की श्रुति भी इसी अर्थ को कहती है॥ **सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति॥ १ ॥** सुषुप्ति काल में जाग्रत् और स्वप्न के व्यवहार का विशेष ज्ञान लीन होजाता है, और अज्ञान करके आच्छादित हुआ, यह जीव आनंदरूप आत्मा को प्राप्त होजाता है और सुख को अनुभव करता है, इसी कारण इस जीव का नाम आत्मा है, और स्वप्न-अवस्था में यह जीव जाग्रत्के छः पदार्थोंकी वासना को लिये रहता है, और अनेक प्रकार का व्यवहार करता है, इस वास्ते भी इसका नाम आत्मा है और जाग्रत्अवस्था में बाह्य चक्षुरादि इन्द्रियों करके भोगों को भोगता है इस वास्ते भी इसका नाम आत्मा है, पूर्वोक्त युक्तियों से अन्तःकरणरूप उपाधि विशिष्टआत्मा का नाम ही जीव है, अब केवल आत्म शब्द के अर्थ को दिखाते हैं, आत्मा का स्वरूप त्रिविध परिच्छेदरहित है, इसीसे वह सर्वत्र गमन कर्ता आत्मा कहा जाता है, जो वस्तु परिच्छेदवाली होती है वह सर्वत्र गमन नहीं कर सकती है, जैसे घट पटादिक पदार्थ परिच्छेदवाले हैं, इसीसे वह सर्वत्र नहीं हैं, जो वस्तु एक देश में हो और एक देश में न हो, वह वस्तु देश परिच्छेदवाली कही जाती है, जैसे घटादिक, और जो एक वस्तु में हो पर दूसरे में न हो, वह वस्तु वस्तुपरिच्छेद

वाली कही जाती है, जैसे नील पीतादिक वर्ण, नीलवर्ण श्वेत में नहीं है, और श्वेतवर्ण नील में नहीं, जो एक काल में हो पर दूसरे काल में न हो, वह वस्तु कालपरिच्छेदवाली कही जाती है, जैसे स्थूलशरीर, सो ऐसा आत्मा नहीं है, यह देश काल वस्तुपरिच्छेद से रहित है, इसी वास्ते वह सर्वत्र गमनकर्ता है, अर्थात् सर्वत्र व्यापक है, और जो व्यापक है, वह नित्य भी है, ज्ञानस्वरूप है, और आनंदस्वरूप भी है, इसी वास्ते वह केवल ब्रह्मात्मा कहा जाता है ॥ उसी केवल आत्मा को इस ऐतरेयोपनिषद् में निरूपण करते हैं ॥ **आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन् नान्यत्किंचनमिषत्** ॥ यह जो दृश्यमान जगत् है, इसकी उत्पत्ति से पहले त्रिविध परिच्छेद से रहित एक आत्मा ही केवल था, आत्मा से विलक्षण और कोई भी वस्तु न थी, तीन प्रकार का परिच्छेद वा भेद होता है, सजातीय १, विजातीय २, स्वगत ३, इसको दृष्टांत में घटाकर दिखाते हैं, जैसे एक वृक्ष में उसी जातिवाले वृक्षांतरों का भेद रहता है, याने वह अपने समान जातिवाले वृक्षों से भिन्न है, और फिर उसी वृक्ष म अपने से भिन्न और जातिवाले पाषाणादिकों का भी भेद रहता है, क्योंकि उनसे भी वह भिन्न है, जैसे एक पीपल के वृक्ष में तज्जातिवाले दूसरे पीपल के वृक्षों का भेद रहता है, और भिन्न जातिवाले आत्मादिक पदों का भी भेद है, क्योंकि उन दोनों से वह भिन्न है, फिर उसी पीपल के वृक्ष में स्वगत भेद भी रहता है, अर्थात् अपनी ही बड़ी-छोटी शाखों का आर पत्तों का भेद रहता है, अपने में प्राप्त हुये का जो अपने से भेद है, उसी का नाम स्वगत भेद है, जैसे आमवृक्ष और उसीमें प्राप्त हुई उसकी शाखा का भेद है, सो आत्मा ऐसा नहीं है, क्योंकि यदि कोई दूसरा आत्मा उसके समान जातिवाला होवै, तब तो उससे सजातीय भेद रहै, सो ऐसा तो नहीं है क्योंकि निराकार निरवयव व्यापक एक ही होता है, इस वास्ते सजातीय भेद से

वह रहित था, और विजातीय भी कोई उसका उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये विजातीय भेद से भी वह रहित था, और निरवयव होने के कारण वह स्वगत भेद से भी रहित था, क्योंकि स्वगत भेद सावयव पदार्थों में ही रहता है, इसलिये त्रिविध भेद से रहित एक अद्वितीय आत्मा जगत् की उत्पत्ति से पूर्व था ॥ वही परमात्मा ईश्वर जगत् की उत्पत्ति से पूर्व प्राणियों को उनके कर्मों के फल भोगाने के लिये पृथिवी आदिक लोकों के उत्पन्न करने की इच्छा को करता भया ॥ १ ॥

मूलम् ।

स इमाँल्लोकानसृजताम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौःप्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयःपृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, इमान्, लोकान्, असृजत, अम्भः, मरीचीः, मरम्, आपः, अदः, अम्भः, परेण, दिवम्, द्यौः, प्रतिष्ठा, अन्तरिक्षम्, मरीचयः, पृथिवी, मरः, याः, अधस्तात्, ताः, आपः ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
सः	वह आत्मा
इमान्	इन
लोकान्	लोकोंको यानी
अम्भः	महदादिलोकों को
मरीचीः	अन्तरिक्षलोकों को
मरम्	पृथिवीलोक को
+च	और
आपः	पृथिवी से अधो लोकों को
असृजत	सृजता भया
द्यौः प्रतिष्ठा	स्वर्ग है आश्रय जिसका, ऐसे
दिवं परेण	देवलोक से परे
अदः	ये महदादिलोक
अम्भः	अम्भलोक हैं
अन्तरिक्षं	अन्तरिक्षलोक यानी वह लोक जो पृथ्वीसे ऊपर, और स्वर्ग से नीचे है, सो
मरीचयः	मरीचिलोक है

पृथिवी=भूलोक	**याः=जो लोक**
मरः=मरलोक है मरणधर्मी होने से	**अधस्तात्=पृथिवी से नीचे हैं**
+ च=और	**ताः=वे**
	आपः=आपःशब्द से प्रसिद्ध हैं ॥

भावार्थ ।

स इति ॥ सो परमात्मा परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति से पूर्व प्रथम जगत् के रचने का विचार करता भया ।

प्र०--विना उपादानकारण के कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है, ऐसा नियम है, तब फिर अकेला परमेश्वर इस जड़ जगत् की उत्पत्ति को कौन से उपादानकारण से करता भया, केवल निरवयव चेतन से तो जड़ जगत् सावयव की उत्पत्ति बनती नहीं ?

उ०--केवल चेतन से जड़ जगत् की उत्पत्ति नहीं बनती है, इस बात को तो हम भी मानते हैं, केवल चेतन को ब्रह्म चेतन करके हम मानते हैं, और मायाविशिष्ट चेतन को हम ईश्वर करके मानते हैं, उसी ईश्वर में जगत् के उत्पन्न करने की इच्छा होती है, केवल शुद्ध ब्रह्म चेतन में फुरनारूपी इच्छा नहीं होती है, माया जड़ है, और ईश्वर का शरीर है, ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, इसलिये उसका शरीर माया भी सर्वत्र विद्यमान है, ईश्वर में प्रथम फुरना होती भई, और उसीमें जगत् भी उत्पन्न होकर स्थिर होता भया, और उसी ईश्वर में प्रलयकाल में जगत् लयभाव को प्राप्त होजाता है, जैसे जीव के स्वप्न अवस्था में जितने हस्ती घोड़े आदिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे सब जीव की फुरना से जीव के शरीर के अंदर ही उत्पन्न होते हैं, और फिर जीव के शरीर के अंदर ही लय भी होजाते हैं, वैसे ही व्यापक ईश्वर का व्यापक शरीररूपी माया के भीतर ही सब जगत् उत्पन्न भी होता है, और लयभाव को भी प्राप्त हो जाता है, जड़भाग माया का जड़ जगत्

का उपादानकारण है, और चेतनभाग निमित्तकारण है, जड़ चेतन उभयभाग निमित्तोपादानकारण हैं, इसलिये वेदांत-सिद्धांत में ईश्वर ही जगत् का अभिन्ननिमित्त उपादानकारण माना है, इस हेतु से जड़ जगत् के रचने की इच्छा भी उसमें ही बन जाती है, इसमें कोई दोष नहीं आता है, मायाविशिष्ट ईश्वर ऐसी इच्छा करता भया कि प्राणियों के कर्मों के फल के भोगने के लिये मैं लोकों को उत्पन्न करूँ, ऐसा विचार करके परमेश्वर वक्ष्यमाण लोकों को उत्पन्न करता भया, प्रथम आकाशादिकों को रच करके ब्रह्मांड को बनाया, ब्रह्मांड में अंभलोक, मरीचिलोक, मरलोक, आपलोक, इन नामोंवाले लोकों को उत्पन्न करता भया, आपही श्रुति अंभादिशब्दों के अर्थ को कहती है ॥ मरीचि नाम सूर्य की किरणों का है, सूर्य की किरणों का उस लोक के साथ अधिक संबंध है, इसलिये उसका नाम मरीचिलोक करके श्रुति ने कहा है, और पृथिवी लोक का नाम मरलोक है, क्योंकि पृथिवीलोक में मरण धर्मवाले प्राणी रहते हैं, और पृथिवीलोक से नीचे जो लोक हैं, वे पातालादि नामवाले अपलोक हैं ॥ पुराणों में जिस रीति से पाताललोक पृथिवी के नीचे लिखा है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि पृथिवी के खोदने से नीचे जल निकलता है, सिवाय जल और मिट्टी के और कुछ भी नहीं, जल के अंदर लोक का होना असम्भव है, इसलिये वेद का लेख ठीक है जैसे सूर्य चन्द्रमा आदिक सब लोक हैं, इसी प्रकार पृथिवी भी एक तारा है, और घूमती रहती है, इससे नीचे की तरफवाले तारों का नाम ही अतल वितलादिलोक पातालादि नामों करके कहे हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नुसृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ईक्षत, इमे, नु, लोकाः, लोकपालान्, नु, सृजै, इति, सः, अद्भ्यः, एव, पुरुषम्, समुद्धृत्य, अमूर्च्छयत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।	अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
इमे लोकाः	ये अम्भादि लोक	ईक्षत	विचार करता भया
नु	होने पर	+च	और
लोकपालान्	लोकपालों को अर्थात् लोकाभिमानी देवगणों को	+सः	वह ईश्वर
नु	निश्चय करके	अद्भ्यः	जलादि पञ्च महाभूतों से
सृजै	मैं सृजूँ	एव	ही
इति	ऐसा	पुरुषम्	विराट्रूप पिण्ड को
सः	वह ईश्वर	समुद्धृत्य	ग्रहण करके
		अमूर्च्छयत्	रचता भया ॥

भावार्थ ।

स ईक्षत इति ॥ मायाविशिष्ट परमेश्वर फिर इच्छा करता भया कि जिन पूर्वोक्त लोकों को मैंने रचा है, वे विना किसी रक्षक के नष्ट होजायँगे, इस विचार से कि वे सब लोक स्थिर रहें, मैं अब लोकपालों को रचूँ, सो पूर्वोक्त इच्छावाला एक परमेश्वर पाँचों भूतों से पुरुषाकार हाथ पांववाला विराट् की एक कठिन मूर्त्ति को बनाता भया, याने जैसे कुलाल तालाब के बीच से गीली मिट्टी को निकास कर एक कठिन पिंड प्रथम बनाता है, वैसे परमेश्वर ने भी पाँच भूतों से प्रथम एक कठिन पिंड अर्थात् गोल आकारवाले पिंड को बनाता भया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्रा-

दिशस्त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य औषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, अभ्यतपत्, तस्य, अभितप्तस्य मुखम्, निरभिद्यत यथा, अण्डम्, मुखात्, वाक्, वाचः, अग्निः, नासिके, निरभिद्येताम्, नासिकाभ्याम्, प्राणः, प्राणात्, वायुः, अक्षिणी, निरभिद्येताम्, अक्षिभ्याम्, चक्षुः, चक्षुषः, आदित्यः, कर्णौ, निरभिद्येताम्, कर्णाभ्याम्, श्रोत्रम्, श्रोत्रात्, दिशः, त्वक्, निरभिद्यत, त्वचः, लोमानि, लोमभ्यः, औषधिवनस्पतयः, हृदयम्, निरभिद्यत, हृदयात्, मनः, मनसः, चन्द्रमाः, नाभिः, निरभिद्यत, नाभ्याः, अपानः, अपानात् मृत्युः, शिश्नम्, निरभिद्यत, शिश्नात्, रेतः, रेतसः, आपः ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

तम्=उस विराट् पुरुषाकार पिंड को

अभ्यतपत्=ईश्वर अपने ज्ञानरूप तप करके तपाता भया

तस्य=उस

अभितप्तस्य=ईश्वरसंकल्प से अभितप्त पुरुष का

मुखम्=मुखाकार छिद्र

निरभिद्यत=निकलता भया

यथाऽण्डम्=जैसे पक्षी का अण्डा फूटता है

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+च=और

मुखात्=उस मुख से

वाक्=वाणी इन्द्रिय उत्पन्न भया

वाचः=वाणी से

अग्निः=अग्निदेवता होता भया

नासिके=दोनों नासिका के छिद्र

निरभिद्येताम्=निकलते भये

नासिकाभ्याम्=नासिकाके छिद्रों से

प्राणः=घ्राण इन्द्रिय होता भया
प्राणात्=घ्राण इन्द्रिय से
वायुः=वायुदेवता होता भया
अक्षिणी=दोनों नेत्र
निरभिद्येताम्=निकलते भये
अक्षिभ्याम्=उन नेत्रों से
चक्षुः=दर्शन इन्द्रिय होता भया
चक्षुषः=दर्शनेन्द्रिय से
आदित्यः=सूर्य होता भया
कर्णौ=दोनों कर्ण
निरभिद्येताम्=निकलते भये
कर्णाभ्याम्=दोनों कर्णों से
श्रोत्रम्=श्रवणेन्द्रिय होता भया
श्रोत्रात्=श्रवणेन्द्रिय से
दिशः=दिशाभिमानी देवता होते भये
त्वक्=त्वचा
निरभिद्यत=निकलती भई
त्वचः=त्वचा से
लोमानि=लोमसहचारी स्पर्शेन्द्रिय होता भया
लोमभ्यः=स्पर्शेन्द्रिय से
ओषधीवनस्पतयः=ओषधिवनस्पतियों का अधिष्ठाता वायुदेवता होता भया
हृदयम्=हृदयकमल
निरभिद्यत=निकलता भया
हृदयात्=हृत्कमल से
मनः=मन होता भया
मनसः=मन से
चन्द्रमाः=चन्द्रमा होता भया
नाभिः=नाभिस्थान
निरभिद्यत=निकलता भया
नाभ्याः=नाभि से
अपानः=गुदेन्द्रिय उत्पन्न होता भया
अपानात्=गुदेन्द्रिय से
मृत्युः=मृत्युदेवता उत्पन्न भया
शिश्नम्=उपस्थेन्द्रिय स्थान
निरभिद्यत=निकलता भया
शिश्नात्=उपस्थेन्द्रिय से
रेतः=वीर्य होता भया
रेतसः=वीर्य से
आपः=जलाभिमानी देवता होता भया॥

भावार्थ ।

तमिति ॥ पूर्ववाले मंत्र में विराट् की उत्पत्ति को कहा है, उस विराट् के अवयवों से अब लोकपालों की उत्पत्ति को कहते हैं, उस विराट् पुरुष को भगवान् तपाता भया अर्थात् उस विराट्रूपी शरीर में

इन्द्रियों के छिद्र और तदभिमानी देवतों के रचने का विचार करत
भया, और फिर उस विराट्रूपी पिंड का मुखाकार छिद्र प्रथ
निकलता भया, जैसे पक्षी का पका हुआ अंडा फूट जाता है औ
उस मुखाकार छिद्र से वागिन्द्रिय उत्पन्न होता भया (यद्यपि वागादि
इन्द्रिय सब अपंचीकृत भूतों के कार्य हैं तथापि मुखरूपी गोलव
से उनकी अभिव्यक्ति अर्थात् प्रतीति होती है, इसलिये उससे उनकी
उत्पत्ति को कहा है) उस वागिन्द्रिय से अग्नि लोकपाल देवत
उत्पन्न हुआ, फिर उस विराट्रूपी पिंड से नासिकारूपी दो छिद्र
निकलते भये, उन नासिका से प्राणवृत्ति के सहित घ्राण इन्द्रिय
उत्पन्न होता भया, फिर उस घ्राण इन्द्रिय से वायु देवता उत्पन्न होत
भया, फिर उस पिंड से नेत्ररूपी छिद्र निकलते भये, और नेत्र इन्द्रिय
से सूर्य देवता उत्पन्न होता भया, फिर उस विराट्रूपी पिंड
से दो कर्ण के छिद्र निकलते भये, उनसे श्रोत्र इन्द्रिय उत्पन्न हुआ
उस श्रोत्र इन्द्रिय से दिगभिमानी देवता उत्पन्न हुआ फिर उस विराट
के पिंड से त्वगिन्द्रिय निकलती भई, उससे स्पर्श इन्द्रिय उत्पन्न हुआ
और स्पर्श इन्द्रिय से औषधियों का अधिष्ठाता वायु देवता उत्पन्न हुआ
फिर उसी विराट् पिंड से हृदयकमल निकलता भया, उस हृदयकमल
से मन उत्पन्न होता भया, मनरूपी अन्तःकरण से उसका अधिष्ठात
चन्द्रमा देवता उत्पन्न होता भया, फिर उस विराट् से नाभि स्थल
निकलता भया, उस नाभि से गुदा इन्द्रिय निकलता भया, गुदा इन्द्रिय
से मृत्यु उत्पन्न होता भया, फिर उस विराट् पिंड से उपस्थ इन्द्रिय
निकलता भया, उस उपस्थ इन्द्रिय से प्रजा की उत्पत्ति का हे
वीर्य उत्पन्न होता भया, और उस वीर्य से जल उत्पन्न होता भया
फिर उस जल से प्रजापति अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न होता भया ॥ ४

इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

मूलम् ।

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ १ । ५ ॥

पदच्छेदः ।

ताः, एताः, देवताः, सृष्टाः, अस्मिन्, महति, अर्णवे, प्रापतन्, तम्, अशनायापिपासाभ्याम्, अन्ववार्जत्, ताः, एनम्, अब्रुवन्, आयतनम्, नः, प्रजानीहि, यस्मिन्, प्रतिष्ठिताः, अन्नम्, अदाम, इति ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
ताः	वे
एताः देवताः	ये लोकाभिमानी देवता अग्नि आदि
सृष्टाः	उत्पन्न किये हुए
अस्मिन्	इस
महति	बड़े
अर्णवे	संसाररूपी समुद्र में
प्रापतन्	गिरते भये
तम्	उस प्रथम उत्पादित पुरुष को
अशनायापिपासाभ्याम्	भूख और प्यास करके
+ ईश्वरः	ईश्वर
अन्ववार्जत्	युक्त करता भया
ताः	वे देवता
इति	इसप्रकार
एनम्	इस ईश्वर से
अब्रुवन्	कहते भये कि
नः	हमारे लिये
आयतनम्	कोई स्थान
प्रजानीहि	विधान कर
यस्मिन्	जिसमें
प्रतिष्ठिताः	रहते हुये
अन्नम्	भोग्यवस्तु को
अदाम	भोगें हम ॥

भावार्थ ।

पूर्वखंड में संपूर्ण इन्द्रियों की और तदभिमानी देवतों की उत्पत्ति का निरूपण किया है, अब इस दूसरे खंड में उन देवतों के भोग के योग व्यष्टि देहों को और उनमें देवतों के वास करने को कहते हैं---

ता इति ॥ जो इन्द्रिय अभिमानी अग्नि आदि देवता उत्पन्न

हुये, वे देवता महान् समुद्ररूपी विराट् का जो ब्रह्माण्डरूपी देह है उसमें प्राप्त होते भये और प्राप्त होकर विराट् के शरीर को क्षुधा और पिपासावाला करते भये, फिर खुद भी क्षुधा और पिपासा करके पीड्यमान हुये, तब अपने पिता परमेश्वर से कहते भये कि हे भगवन्! हमारे भोग के योग शरीर को आप बताओ जिस शरीर में हम सब देवता स्थित होकर भोग के योग्य वस्तु को भक्षण करें॥ १ । ५ ॥

मूलम् ।

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ २ । ६ ॥

पदच्छेदः ।

ताभ्यः, गाम्, आनयत्, ताः, अब्रुवन्, न, वै, नः, अयम्, अलम्, इति, ताभ्यः, अश्वम्, आनयत्, ताः, अब्रुवन्, न, वै, नः, अयम्, अलम्, इति ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।	अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
ताभ्यः	उन अग्नि आदि देवताओं के लिये	ताभ्यः	उनके अर्थ
गाम्	गऊकार पिण्ड को	+ पुनः	फिर
+ ईश्वरः	ईश्वर	अश्वम्	अश्वाकृति पिंड को
आनयत्	दिखाता भया	ईश्वरः	ईश्वर
ताः	वे देवता	आनयत्	दिखाता भया
इति	इस प्रकार	ताः	वे देवता
अब्रुवन्	कहते भये कि	इति	इस प्रकार
नः	हमारे लिये	अब्रुवन्	कहते भये कि
अयम्	यह गवाकृति पिण्ड	नः	हमारे लिये
वै	निश्चय करके	अयम्	यह अश्वाकृति पिण्ड
अलम्	योग्य	वै	निश्चय करके
न	नहीं है	अलम्	योग्य
		न	नहीं है ॥

भावार्थ ।

ताभ्य इति ॥ जब सब इन्द्रियों के देवतों ने ईश्वर से अपने भोग के योग्य शरीर को माँगा तब पाँचो भूतों से रचकर गौ के आकारवाले शरीर को उनके सम्मुख किया गया । उस गौ के पिंड को देखकर देवता कहते भये कि हमारे लिये यह गौ का पिंड भोग्य के योग्य नहीं है, तब पाँचो भूतों से बना हुआ अश्व का शरीर उन देवतों के सामने लाया गया, देवतों ने कहा, यह भी हमारे भोग्य के योग्य नहीं है, क्योंकि इन शरीरों में विचार करने की शक्ति नहीं है, और विचार-हीन होने से आनंद कहाँ ॥ २ । ६ ॥

मूलम् ।

ताभ्यः पुरुषमानयत् ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम् ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनम् प्रविशतेति ॥ ३ । ७ ॥

पदच्छेदः ।

ताभ्यः, पुरुषम्, आनयत्, ताः, अब्रुवन्, सुकृतम्, बत, इति, पुरुषः, वाव, सुकृतम्, ताः, अब्रवीत्, यथायतनम्, प्रविशत, इति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

ताभ्यः=तिन देवताओं के लिये
+ पुनः=फिर
पुरुषम्=पुरुष शरीर को
आनयत्=दिखाता भया
ताः=वे देवता
इति=इस प्रकार
अब्रुवन्=कहते भये कि
सुकृतम्=शोभन यह अधिष्ठान है
बत=इसमें हम सन्तुष्ट हैं
ताः=उन देवताओं से

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+ ईश्वरः=ईश्वर
इति=इस प्रकार
अब्रवीत्=कहता भया कि
यथायतनं=अपने-अपने योनिस्थान में
प्रविशत=तुम सब प्रवेश करो
तस्मात्=इसीलिये
पुरुषः=पुरुष
वाव=ही
सुकृतम्=सुकृत है अर्थात् पुण्य का हेतु है ॥

भावार्थ ।

ताभ्य इति ॥ देवतों ने फिर कहा कि विचार और भोग्य के योग्य जो ऐसा कोई शरीर हो उसको हमारे लिये लाओ । तब पाँचो भूतों का कार्य मनुष्यशरीर उनके सामने लाया गया तब उसको देखकर देवतों ने कहा कि यह शरीर हमारे भोग्य के योग्य है और हर्ष को भी प्राप्त होते भये, और कहने लगे कि यह शरीर परमेश्वर ने हमारे लिये बहुतही उत्तम बनाया है, शोभनीय है, क्योंकि पुण्यकर्मों का कार्य है, इसी कारण लोक में भी सब शरीरों की अपेक्षा मनुष्य शरीर ही उत्तम कहा जाता है, फिर उन देवतों से ईश्वर कहता भया कि हे देवतो ! अपने-अपने गोलक स्थान में प्रवेश करो, तब जैसे राजा की आज्ञा को पाकर सेनापति अपने-अपने स्थानों में प्रवेश कर जाते हैं, इसी प्रकार ईश्वर की आज्ञा को पाकर सब देवता भी अपने-अपने गोलक स्थानों में प्रवेश करते भये ॥ ३ । ७ ॥

मूलम् ।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचम्प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन् मृत्युरपानो भूत्वा नाभिम्प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नम्प्राविशन् ॥ ४ । ८ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निः, वाक्, भूत्वा, मुखम्, प्राविशत्, वायुः, प्राणः, भूत्वा, नासिके, प्राविशत्, आदित्यः, चक्षुः, भूत्वा, अक्षिणी, प्राविशत्, दिशः, श्रोत्रम्, भूत्वा, कर्णौ, प्राविशन्, ओषधिवनस्पतयः, लोमानि, भूत्वा, त्वचम्, प्राविशन्, चन्द्रमाः, मनः, भूत्वा, हृदयम्, प्राविशत्, मृत्युः, अपानः,

भूत्वा, नाभिम्, प्राविशत्, आपः, रेतः, भूत्वा, शिश्नम्, प्राविशन् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
अग्निः	अग्नि देवता ईश्वर की आज्ञा से
वाक्	वाणीरूप
भूत्वा	हो करके
मुखम्	स्वयोनि मुख बिषे
प्राविशत्	प्रवेश करता भया
वायुः	वायु देवता
प्राणः	प्राणरूप
भूत्वा	होकर
नासिके	नासिका के दोनों छिद्रों बिषे
प्राविशत्	प्रवेश करता भया
आदित्यः	सूर्य देवता
चक्षुः	दर्शन-इन्द्रिय
भूत्वा	होकर
अक्षिणी	दोनों नेत्रों बिषे
प्राविशत्	प्रवेश करता भया
दिशः	दिग्देवता
श्रोत्रम्	श्रवणेन्द्रिय
भूत्वा	होकर
कर्णौ	कानों के दोनों छिद्रों बिषे
प्राविशन्	प्रवेश करते भये
ओषधिवनस्पतयः	औषधी और वनस्पति अभिमानी देवता
लोमानि	रोमरूप
भूत्वा	होकर
त्वचम्	त्वचा बिषे
प्राविशन्	प्रवेश करते भये
चन्द्रमाः	चंद्रमा देवता
मनः	मनरूप
भूत्वा	होकर
हृदयम्	हृदयकमल बिषे
प्राविशत्	प्रवेश करता भया
मृत्युः	मृत्यु देवता
अपानः	अपानरूप
भूत्वा	होकर
नाभिम्	नाभि बिषे
प्राविशत्	प्रवेश करता भया
आपः	जलदेवता
रेतः	वीर्यरूप
भूत्वा	होकर
शिश्नम्	शिश्नस्थान बिषे
प्राविशन्	प्रवेश करते भये ॥

भावार्थ ।

अग्निरिति ॥ जिसकाल में ईश्वर ने देवतों को अपने २ स्थान में प्रवेश करने की आज्ञा दिया उस काल में वागिन्द्रिय अभिमानी अग्निदेवता वागिन्द्रिय के अन्तर हो करके मुखरूपी छिद्र में प्रवेश

करता भया, और वायुदेवता प्राणरूप से घ्राण इन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर नासिकारूपी छिद्रों में प्रवेश करता भया, और सूर्यदेवता चक्षुरूप से चक्षु इन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर नेत्ररूपी गोलक में प्रवेश करता भया, और दिग्देवता श्रोत्ररूप से श्रोत्रेन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर कर्णरूपी छिद्रों में प्रवेश करता भया, और ओषधी आदिकों का अधिष्ठातृ देवता त्वगिन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर चर्मरूपी त्वचा में प्रवेश करता भया, और चन्द्रमा देवता मन के अन्तर्भूत होकर हृदय में प्रवेश करता भया, और यमरूप देवता पायु इन्द्रिय के अन्तर्भूत होकर अपानरूप से गुदा के मूल स्थान में प्रवेश करता भया, और प्रजापति देवता वीर्यरूप होकर शिश्न स्थान में प्रवेश करता भया ॥४।८॥

मूलम् ।

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति स ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ॥ ५ । ६ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, अशनायापिपासे, अब्रूताम्, आवाभ्याम्, अभिप्रजानीहि, इति, सः, ते, अब्रवीत्, एतासु, एव, वाम्, देवतासु, आभजामि, एतासु, भागिन्यौ, करोमि, इति, तस्मात्, यस्यै, कस्यै, च, देवतायै, हविः, गृह्यते, भागिन्यौ, एव, अस्याम्, अशनायापिपासे, भवतः ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।	अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
अशनायापिपासे=भूख और प्यास दोनों		**इति**=इस प्रकार	
तम्=उस ईश्वर से		**अब्रूताम्**=कहती भई कि	
		आवाभ्याम्=हम दोनोंके लिये	

अभिप्रजानीहि=अधिष्ठान बना
स:=वह ईश्वर
ते=उन क्षुधा पिपासा से
इति=इस प्रकार
अब्रवीत्=कहता भया कि
एतासु=इन
एव=ही
देवतासु=अग्नि आदि देवताओं विषे
वाम्=तुम दोनों को
आभजामि=जीविका देताहूं मैं
+ च=और
एतासु=इन देवताओंविषे
+ वाम्=तुम दोनों को
भागिन्यौ=भागपाने योग्य
करोमि=करता हूं मैं
च=और
तस्मात्=इसी कारण
यस्यै=जिस
कस्यै=किसी
देवतायै=देवता के देने के अर्थ
हवि:=होमद्रव्य
गृह्यते=ग्रहणकियाजाताहै
अस्याम्=उस देवता विषे
अशनायापिपासे=भूख और प्यास दोनों
भागिन्यौ=भागपानेवाली
एव=निश्चय करके
भवत:=होती हैं ॥

भावार्थ ।

तमिति ॥ अब देह में क्षुधा पिपासा के प्रवेश को भी प्रश्नपूर्वक कहते हैं, उस परमेश्वर को क्षुधा पिपासा भी इसप्रकार कहते भये, हे भगवन् ! हमारे लिये भी इसी शरीर में स्थान दो । तब परमेश्वर उनसे कहता है, ये जो अग्नि आदि देवता हैं, इन में रहकर तुम हवि आदिक भाग को ग्रहण करो, यही देवता इन्द्रिय तुम्हारे रहने के स्थान होवेंगे । जिस कारण सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने उनसे ऐसा कहा है, उसी कारण अग्नि आदिक देवतों के लिये भोग्य वस्तु समर्पण की जाती है, और क्षुधा पिपासा अपने भाग को उन्हीं देवतों से ग्रहण कर लेते हैं, अर्थात् हवि करके जब अग्नि आदिक देवता तृप्त हो जाते हैं, तब क्षुधा पिपासा भी तृप्त होजाते हैं ॥ ५।६ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥ १ । १० ॥

पदच्छेदः ।

सः, ईक्षते, इमे, नु, लोकाः, च, लोकपालाः, च, अन्नम्, एभ्यः, सृजै इति ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
सः	वह ईश्वर
इति	इस प्रकार
नु	फिर
ईक्षते	विचारकरताभया कि
+ ये	जो
इमे	ये
लोकाः	लोक
च	और
लोकपालाः	लोकपाल
+ सन्ति	हैं
एभ्यः	इनके लिये
च	निश्चय करके
अन्नम्	भोग्य वस्तु को
सृजै	सृजूं मैं ॥

भावार्थ ।

पूर्व देवतों की और इन्द्रियों की उत्पत्ति को कहा, फिर उनकी प्रवृत्ति के हेतुभूत जो भोग का साधन क्षुधा तृषा है, उनकी सृष्टि का भी कथन किया । अब भोग्य सृष्टि को अर्थात् भोगने के योग्य सृष्टि को कहते हैं ॥

स इति ॥ परमेश्वर फिर इस प्रकार इच्छा करता भया कि पृथिवी आदि लोकों को और सहित शरीर के इन्द्रियादि देवता, देव और लोकपालों को मैंने उत्पन्न किया, परन्तु अन्न से बिना उनका जीना असंभव है, इसलिये उनके वास्ते मैं अब अन्न को रचूं ॥१ । १० ॥

मूलम् ।

सोऽपोऽभ्यतपत् ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्त्तिरजायत या वै सा मूर्त्तिरजायतान्नं वै तत् ॥ २ । ११ ॥

पदच्छेदः ।

सः, अपः, अभ्यतपत्, ताभ्यः, अभितप्ताभ्यः, मूर्त्तिः, अजायत, या, वै, सा, मूर्त्तिः, अजायत, अन्नम्, वै, तत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
सः	सो ईश्वर
अपः	जल आदि पंच महाभूतों को
अभ्यतपत्	अन्नभावना से भावित करता भया अर्थात् पञ्च महाभूतों से अन्न उत्पन्न हो, ऐसा संकल्प करता भया
अभितप्ताभ्यः	ईश्वर करके भावित हुये
ताभ्यः	उन पञ्च महाभूतों से
मूर्त्तिः	घन अर्थात् कठिनरूप*चराचर अन्न
अजायत	उत्पन्न होता भया
च	और
या	जो
सा मूर्त्तिः	वह चराचर लक्षणवाली मूर्ति घनरूप
अजायत	उत्पन्न भई
तत्	सो
एव	ही
वै	निश्चय करके
अन्नम्	अन्न अर्थात् भोग्य वस्तु है ॥

भावार्थ ।

स इति ॥ ऐसा विचार करके परमेश्वर पंचभूतों को तपाता भया, उन पाँचों भूतों से मनुष्यों के लिये व्रीहि यवादिरूप अन्न, पशुओं के लिये तृणादिरूप अन्न, सिंहादिकों के लिये मृगादिरूप अन्न, सर्पादिकों के लिये वायुरूपी अन्न, और मार्जारादिकों के लिये मूसकादिरूप अन्न को उत्पन्न करता भया ॥ २ । ११ ॥

मूलम् ।

तदेतदभिसृष्टं पराङत्यजिघांसत् तद्वाचाऽजिघृक्षत्तन्ना-

* चराचर=चर चलने फिरनेवाले जो भोग्य हैं जैसे चूहा भोग्य है बिल्ली का, अचर स्थिर वस्तु जो भोग्य है जैसे वनस्पति आदिक भोग्य हैं मनुष्यों के ॥

**कोद्वाचा गृहीतुं स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य
ानमत्रप्स्यत् ॥ ३ । १२ ॥**

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, अभिसृष्टम्, पराङ्, अत्यजिघांसत्, तत्, वाचा, जेघृक्षत्, तत्, न, अशक्नोत्, वाचा, गृहीतुम्, सः, यद्वा, एनत्, वा, अग्रहैष्यत्, अभिव्याहृत्य, हा, एव, अन्नम्, अत्रप्स्यत् ॥

न्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

तत्=सो
अभिसृष्टम्=सृजा हुआ
एतत्=यह अन्न
पराङ्=विमुख हुआ अर्थात् मुँह मोड़कर
त्यजिघांसत्=भागने को चाहता भया
तत्=उस अन्न को
वाचा=वाक् इन्द्रिय से अर्थात् मुख करके
सः पुरुषः=वह पुरुष
अजिघृक्षत्=ग्रहण करने को चाहता भया
+ परन्तु=परंतु
+ तत्=उस अन्न को

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

वाचा=वाक्इन्द्रिय से
गृहीतुम्=ग्रहण करने को
न=नहीं
अशक्नोत्=समर्थ होता भया
यद्वा=अगर
सः=वह आदिपुरुष
एनत्=इस अन्न को
वाचा=वागिन्द्रिय से
अग्रहैष्यत्=ग्रहण कर सकता
हा=तो
अन्नम्=भोग्य वस्तु अन्न को
अभिव्याहृत्य=वाणी के उच्चारण-मात्र से ही
अत्रप्स्यत्=लोक तृप्त होजाता ॥

भावार्थ ।

अब अन्न को ग्रहण करने के साधन को कहते हैं ॥

तदेतादिति ॥ यह जो व्रीहि यवादि अन्न है उसको उस पुरुष के सम्मुख रख दिया तब वह अन्न उसको अपना मृत्यु जान करके भागा, जैसे मूषा बिलार से भागता है, तब वह पुरुष वागिन्द्रिय करके उस अन्न

को ग्रहण कर ने की इच्छा करता भया, तब वह वागिन्द्रिय करके उसके ग्रहण करने में समर्थ न होता भया । अगर प्रथम उत्पन्न हुआ पुरुष वागिन्द्रिय करके अन्न को ग्रहण करने में समर्थ होता, तो इस काल के सम्पूर्ण भोक्तृवर्ग केवल भोग्यवस्तु अन्न को वाणी के उच्चारण करने से ही तृप्त हो जाते अर्थात् व्रीहि यवादिरूप अन्नों के नाम लेने से ही तृप्त हो जाते, पर ऐसा न होने से इस काल के जीव भी अन्न का नाम लेने से तृप्त नहीं होते हैं ॥ ३ । १२ ॥

मूलम् ।

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन गृहीतुम् स यद्धैनत्प्राणेनाऽग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ४ । १३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, प्राणेन, अजिघृक्षत्, तत्, न, अशक्नोत्, प्राणेन, गृहीतुम्, सः, यद्धा, एनत्, प्राणेन, अग्रहैष्यत्, अभिप्राण्य, हा, एव, अन्नम्, अत्रप्स्यत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।	अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तत्	उस अन्न को	यद्धा	अगर
प्राणेन	प्राणेन्द्रिय द्वारा	सः	वह आदि पुरुष
सः	वह आदिपुरुष	एनत्	इस भोग्य अन्न को
अजिघृक्षत्	ग्रहण करने को चाहता भया	प्राणेन	घ्राणेन्द्रिय द्वारा
+परन्तु	परंतु	अग्रहैष्यत्	ग्रहण कर सकता
तत्	उस अन्न को	हा	तो
प्राणेन	घ्राण इन्द्रिय करके	अन्नम्	भोग्यवस्तु को
गृहीतुम्	ग्रहण करने को	अभिप्राण्य	सूँघ करके
न	नहीं	एव	ही
अशक्नोत्	समर्थ होता भया	अत्रप्स्यत्	लोक तृप्त होजाता ॥

भावार्थ ।

तदिति ॥ उस पूर्वोक्त अन्न को वह आदिपुरुष प्राणेन्द्रिय द्वारा

ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर वह घ्राणेन्द्रिय करके उस अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होता भया । यदि वह प्रथम पुरुष घ्राणेन्द्रिय करके अन्न को ग्रहण कर सकता, तब इस काल के भी सब जीव अन्न को सूँघ करके ही तृप्त होजाते, पर ऐसा न होने से अब कोई भी जीव अन्न को सूँघ करके तृप्त नहीं होता है ॥ ४ । १३ ॥

मूलम् ।

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्चक्षुषा गृहीतुम् स यद्धै-नच्चक्षुषाऽग्रहैष्यत् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ५ । १४ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, चक्षुषा, अजिघृक्षत्, तत्, न, अशक्नोत्, चक्षुषा, गृहीतुम्, सः, यद्धा, एनत्, चक्षुषा, अग्रहैष्यत्, दृष्ट्वा, हा, एव, अन्नम, अत्रप्स्यत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
सः	वह आदिपुरुष
तत्	उस अन्न को
चक्षुषा	नेत्रेन्द्रिय द्वारा
अजिघृक्षत्	ग्रहण करने की इच्छा करता भया
+ परन्तु	परंतु
तत्	उस भोग्य अन्न को
चक्षुषा	चक्षु इन्द्रिय करके
गृहीतुम्	ग्रहण करने को
न	नहीं
अशक्नोत्	समर्थ होता भया
यद्धा	अगर
सः	वह पुरुष
एनत्	इस भोग्य अन्न को
चक्षुषा	नेत्र इन्द्रिय करके
अग्रहैष्यत्	ग्रहण कर सकता
हा	तो
अन्नम्	भोग्य-वस्तु को
दृष्ट्वा	देख करके
एव	ही
अत्रप्स्यत्	लोक तृप्त हो जाता ॥

भावार्थ ।

तच्चक्षुषेति ॥ प्रथम उत्पन्न हुआ पुरुष अन्न को चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर वह चक्षुइन्द्रिय करके उस

अन्न को ग्रहण करने में समर्थ न होता भया । यदि चक्षु इन्द्रिय करके अन्न के ग्रहण करने में वह आदिपुरुष समर्थ होता, तो इस काल के भी सब लोक अन्न को देख करके ही तृप्त हो जाते, पर ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसा ईश्वर ने प्रथम संकेत किया है, वैसाही चला आता है ॥ ५ । १४ ॥

मूलम् ।

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण गृहीतुम् स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ६ । १५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, श्रोत्रेण, अजिघृक्षत्, तत्, न, अशक्नोत्, श्रोत्रेण, गृहीतुम्, सः, यद्वा, एनत्, श्रोत्रेण, अग्रहैष्यत्, श्रुत्वा, हा, एव, अन्नम्, अत्रप्स्यत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तत्	उस अन्न को
श्रोत्रेण	श्रवणेन्द्रिय द्वारा
सः	वह आदि पुरुष
अजिघृक्षत्	ग्रहण करना चाहता भया
+ परन्तु	परंतु
तत्	उस भोग्य अन्न को
श्रोत्रेण	श्रवणेन्द्रिय करके
गृहीतुम्	ग्रहण करने को
न	नहीं
अशक्नोत्	समर्थ होता भया
यद्वा	अगर
+ सः	वह
एनत्	इस भोग्य अन्न को
श्रोत्रेण	श्रवणेन्द्रिय द्वारा
अग्रहैष्यत्	ग्रहण कर सकता
हा	तो
अन्नम्	अन्न को
श्रुत्वा	सुन करके
एव	ही
अत्रप्स्यत्	लोक तृप्त होजाता ॥

भावार्थ ।

श्रोत्रेणेति ॥ फिर प्रथम पुरुष उस अन्न को श्रोत्रेन्द्रिय करके ग्रहण करने को उद्यत होता भया, परंतु वह श्रोत्रेन्द्रिय करके उस

अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होता भया । यदि वह श्रोत्रेन्द्रिय करके उसके ग्रहण करने में समर्थ होता, तो इदानीं काल के भी सब लोक श्रोत्र से श्रवण करके ही तृप्त होजाते ॥ ६ । १५ ॥

मूलम् ।

तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत् त्वचा गृहीतुम् स यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ७ । १६ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, त्वचा, अजिघृक्षत्, तत्, न, अशक्नोत्, त्वचा, गृहीतुम्, सः, यद्वा, एनत्, त्वचा, अग्रहैष्यत्, स्पृष्ट्वा, हा, एव, अन्नम्, अत्रप्स्यत् ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

तत्=उस अन्न को
त्वचा=स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा
+ सः=वह आदिपुरुष
अजिघृक्षत्=ग्रहण करने को इच्छा करता भया
+ परन्तु=परंतु
तत्=उस अन्न को
त्वचा=स्पर्शनेन्द्रिय करके
गृहीतुम्=ग्रहण करने को
न=नहीं
अशक्नोत्=समर्थ होता भया
यद्वा=अगर
सः=वह पुरुष
एनत्=इस भोग्य अन्न को
त्वचा=स्पर्शनेन्द्रिय करके
अग्रहैष्यत्=ग्रहण कर सकता
हा=तो
अन्नम्=भोग्य अन्न को
स्पृष्ट्वा=स्पर्श करके
एव=ही
अत्रप्स्यत्=लोक तृप्त होजाता ॥

भावार्थ ।

तत्त्वचेति ॥ फिर वह आदिपुरुष उस अन्न को त्वगिन्द्रिय करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर वह त्वगिन्द्रिय करके उस अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होता भया । यदि वह अन्न को त्वगिन्द्रिय

करके ही ग्रहण कर लेता, तो इदानीं काल के भी सब लोक त्वगिन्द्रिय द्वारा स्पर्श करके ही तृप्त होजाते ॥ ७ । १६ ॥

मूलम् ।

तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा गृहीतुम् स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ८ । १७ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, मनसा, अजिघृक्षत्, तत्, न, अशक्नोत्, मनसा, गृहीतुम्, सः, यद्धा, एनत्, मनसा, अग्रहैष्यत्, ध्यात्वा, हा, एव, अन्नम्, अत्रप्स्यत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तत्	उस अन्न को
मनसा	मन से
+ सः	वह आदिपुरुष
अजिघृक्षत्	ग्रहण करने को इच्छा करता भया
+ परन्तु	परंतु
तत्	उस भोग्य अन्न को
मनसा	मन करके
गृहीतुम्	ग्रहण करने को
न	नहीं
अशक्नोत्	समर्थ होता भया
यद्धा	अगर
सः	वह पुरुष
एनत्	इस भोग्य अन्न को
मनसा	मन से
अग्रहैष्यत्	ग्रहण कर सकता
हा	तो
अन्नम्	भोग्य-वस्तु को
ध्यात्वा	ध्यान करके
एव	ही
अत्रप्स्यत्	लोक तृप्त होजाता ॥

भावार्थ ।

तन्मनसेति ॥ फिर वह विराट्पुरुष इस अन्न को मन करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, पर ऐसा करने को समर्थ न भया । यदि वह मन करके इस अन्न को ग्रहण कर लेता, तो इदानीं काल के जितने जीव विराट्पुरुष से उत्पन्न हुए हैं, सब इस अन्न के संकल्पमात्र करके ही तृप्त होजाते ॥ ८ । १७ ॥

मूलम् ।

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेन गृहीतुम् स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ६ । १८ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, शिश्नेन, अजिघृक्षत्, तत्, न, अशक्नोत्, शिश्नेन, गृहीतुम्, सः, यद्धा, एनत्, शिश्नेन, अग्रहैष्यत्, विसृज्य, हा, एव, अन्नम्, अत्रप्स्यत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तत्	उस अन्न को
शिश्नेन	प्रजनन इन्द्रिय द्वारा
+ सः	वह आदिपुरुष
अजिघृक्षत्	ग्रहण करने को चाहता भया
+ परन्तु	परंतु
तत्	उस अन्न को
शिश्नेन	प्रजनन इन्द्रिय करके
गृहीतुम्	ग्रहण करने को
न	नहीं
अशक्नोत्	समर्थ होता भया
यद्धा	अगर
सः	वह
एनत्	इस अन्न को
शिश्नेन	प्रजननेन्द्रिय से
अग्रहैष्यत्	ग्रहण कर सकता
हा	तो
अन्नम्	भोग्य वस्तु को
विसृज्य	त्याग करके
एव	ही
अत्रप्स्यत्	लोक तृप्त होजाता ॥

भावार्थ ।

तच्छिश्नेनेति ॥ फिर वह प्रथम पुरुष अन्न को शिश्नेन्द्रिय करके अर्थात् लिंग इन्द्रिय करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया, परंतु लिंग इन्द्रिय करके वह ग्रहण करने में समर्थ न होता भया । यदि वह लिंग इन्द्रिय करके ग्रहण कर लेता, तो इसकाल के जीव भी वीर्य की तरह उसका त्याग करके ही तृप्त होजाते ॥ ६ । १८ ॥

मूलम् ।

तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् स एषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः ॥ १० । १९ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, अपानेन, अजिघृक्षत्, तदा, आवयत्, सः, एषः, अन्नस्य, ग्रहः, यद्वायुः, अन्नायुः, वै, एषः, यद्वायुः ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तत्	उस अन्न को
अपानेन	अपान वायु से अर्थात् मुखद्वारा
सः	वह आदिपुरुष
अजिघृक्षत्	ग्रहण करने की इच्छा करता भया
तदा	तब
सः	वह
आवयत्	ग्रहण कर सकता भया
यद्वायुः	जो अपान वायु है
सः	सो
एषः	यह
अन्नस्य	अन्न का
ग्रहः	ग्राहक है
+ च	और
+ एषः	यह
+ यद्वायुः	जो अपान वायु है
+ सः	सो
वै	निश्चय करके
अन्नायुः	अन्न भोग द्वारा भोक्ता का आयुर्वृद्धि करनेवाला है ॥

भावार्थ ।

तदपानेनेति ॥ जब वह प्रथम पुरुष पूर्वोक्त इन्द्रियों करके अन्न के ग्रहण करने में समर्थ न होता भया, तब फिर अपान वायु करके अर्थात् मुखद्वार के भीतर जो वायु गमन करती है, उस वायु करके ग्रहण करने की इच्छा करता भया । तब वह उस अन्न को भक्षण कर लेता भया इसलिये अपान वायु अन्न का ग्राहक है और यही निश्चय करके अन्न द्वारा अन्न के भोक्ता का आयुर्वृद्धि करनेवाला है ॥ १० । १९ ॥

मूलम् ।

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति, स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति स ईक्षत, यदि वाचाऽभिव्याहृतम्, यदि प्राणेनाभिप्राणितं, यदि चक्षुषा दृष्टं, यदि श्रोत्रेण श्रुतं, यदि त्वचा स्पृष्टं, यदि मनसा ध्यातं, यद्यपानेनाभ्यपानितं, यदि शिश्नेन विसृष्टमथकोऽहमिति ॥ ११ । २० ॥

पदच्छेदः ।

सः, ईक्षत, कथम्, नु, इदम्, मदृते, स्यात्, इति, सः, ईक्षत, कतरेण, प्रपद्यै, इति, सः, ईक्षत, यदि, वाचा, अभिव्याहृतम्, यदि, प्राणेन, अभिप्राणितम्, यदि, चक्षुषा, दृष्टम्, यदि, श्रोत्रेण, श्रुतम्, यदि, त्वचा, स्पृष्टम्, यदि, मनसा, ध्यातम्, यदि, अपानेन, अभ्यपानितम्, यदि, शिश्नेन, विसृष्टम्, अथ, कः, अहम्, इति ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।	अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
सः	वह ईश्वर	प्रपद्यै	मैं प्रवेश करूँ इस पिंडरूप पुर में
इति	ऐसा	इति	ऐसा
नु	पुनः	सः	वह ईश्वर
ईक्षत	विचार करता भया कि	ईक्षत	विचार करता भया
इदम्	यह कार्य-कारण-रूप पिंड	अथ	फिर
मदृते	मुझ विना	इति	इस प्रकार
कथम्	कैसे	सः	वह ईश्वर
स्यात्	रहेगा	ईक्षत	विचार करता भया कि
च	और	यदि	अगर
कतरेण	किस मार्ग से		

इन्द्रियाभिमानी देवः = इन्द्रियाभिमानी देवता
वाचा=वाणी करके
अभिव्याहृतम्=बोला
यदि=अगर
प्राणेन=प्राणेन्द्रिय करके
अभिप्राणितम्=सूँघा
+ यदि=अगर
चक्षुषा=नेत्र करके
दृष्टम्=देखा
यदि=अगर
श्रोत्रेण=श्रोत्रेन्द्रिय करके
श्रुतम्=सुना
यदि=अगर
त्वचा=स्पर्शेन्द्रिय करके
स्पृष्टम्=स्पर्श किया
यदि=अगर
मनसा=मन करके
ध्यातम्=ध्यान किया
+ यदि=अगर
अपानेन=अपानवायुकरके
अभ्यपानितम्=अशन किया याने खाया
यदि=अगर
शिश्नेन=शिश्नेन्द्रिय करके
विसृष्टम्=विसर्जन किया अर्थात् त्याग किया
+ तु=तो
अहम्=मैं
कः=कौन हूँ ॥

भावार्थ ।

आत्मा को संसारी पुरुष बनाने के लिये प्रथम अन्नपानादिरूप भोग सृष्टि का निरूपण किया, अब भोग के स्वामी के स्वरूप को दिखलाने के लिये ईश्वर की इच्छा को दिखलाते हैं--

स ईक्षतेति ॥ वह परमात्मा परमेश्वर ऐसा विचारता भया कि पुर के स्वामी के विना पुर की रचना शोभा को प्राप्त नहीं होती है और न वह पुर बना रह सकता है इसलिये भोग का स्वामी बनकर मैं इस शरीर में प्रवेश करूँ, फिर सोचा कि इस शरीर में प्रवेश करने के दो मार्ग हैं । एक तो पाद का अग्रभाग है, दूसरा शिर में ब्रह्मरन्ध्र द्वार है । उन दोनों मार्गों में से किस मार्ग करके मैं इस शरीर में प्रवेश करूँ, क्योंकि विना मेरे प्रवेश करने के इस शरीर का व्यवहार नहीं चलेगा । यदि इन्द्रियाभिमानी देवता वागिन्द्रिय करके बोला, घ्राणेन्द्रिय

करके सूँघा, चक्षु इन्द्रिय करके देखा, श्रोत्र इन्द्रिय करके श्रवण किया, त्वगिन्द्रिय करके स्पर्श किया, मन करके ध्यान किया, अपानवायु करके अन्न का भक्षण किया, उपस्थ इंद्रिय करके वीर्य का त्याग किया, तो मैं कौन हूँ, क्या मेरा स्वरूप है, किसका मैं स्वामी हूँ, ये सब व्यवहार मेरे बगैर कैसे होंगे, और कौन जानेगा कि इस शरीर का एवं इंद्रियों का प्रेरक मैं ही हूँ, और इन सबसे पृथक् हूँ ॥ ११ । २० ॥

मूलम् ।

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत सैषा विद्दतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनं तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति १२।२१॥

पदच्छेदः ।

सः, एतम्, एव, सीमानम्, विदार्य, एतया, द्वारा, प्रापद्यत, सा, एषा, विद्दतिः, नाम, द्वाः, तदेतत्, नान्दनम्, तस्य, त्रयः, आवसथाः, त्रयः, स्वप्नाः, अयम्, आवसथः, अयम्, आवसथः, अयम्, आवसथः, इति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

सः=वह ईश्वर
एतम्=इस
एव=ही
सीमानम्=त्रिकपाल संधि ब्रह्मरंध्र को
विदार्य=छिद्र करके
एतया=उसी
द्वारा=मार्ग से
प्रापद्यत=प्रवेश करता भया
सा=सो
एषा=यह
द्वाः=मार्ग
विद्दतिः=विद्दति किया हुआ यानी छेदा हुआ
तदेतत्=वह यह
नान्दनम्=ब्रह्मानंद-प्राप्तिका द्वार है अर्थात् आनंद का देनेवाला है
तस्य=उस पुराधीश ईश्वर के
त्रयः=तीन

आवसथाः=स्थान हैं	आवसथः=स्थान है
त्रयः=तीन	अयम्=यही
स्वप्नाः=स्वप्न हैं	आवसथः=स्थान है
सः=वह	अयम्=यही
अयम्=यही	आवसथः=स्थान है ॥

भावार्थ ।

स इति ॥ वागादि इन्द्रियों के व्यवहार की सिद्धि के लिये मेरे को अवश्यही इस शरीर में प्रवेश करना चाहिये, ऐसा विचार करके वह परमेश्वर ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से शरीर में प्राप्त होता भया । इसी कारण मूर्द्धा में ही ज्ञानेन्द्रियों की बहुलता करके उपलब्धि होती है, यही ब्रह्मानंद के प्राप्ति का द्वार है, इसका नाम विद्दति है, क्योंकि परमात्मा ने इसको विदीरण करके शरीर के अंतर प्रवेश किया है, और इसी द्वार से उपासक मरण समय में ब्रह्मलोक को जाकर आनंद भोगता है । इस शरीर में प्रविष्ट हुआ जो आत्मा है उसके क्रीड़ा करने के तीन स्थान हैं । एक तो नेत्र स्थान है, जो आत्मा की जाग्रत् अवस्था है, और दूसरा कंठ-स्थान है, जो उसकी स्वप्न-अवस्था है, और तीसरा हृदय-स्थान है, जो उसकी सुषुप्तावस्था है, इन तीनों स्थानों में बैठकर वह बाहर भीतर विश्व का द्रष्टा है ॥ १२ । २१ ॥

मूलम् ।

स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत् किमिहान्यं वावदिषदिति स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यदिदमदर्शमिति ॥ १३ । २२ ॥

१—जो श्रुति ने 'आवसथ' अर्थात् स्थान तीनबार दिखाया है, उसका अभिप्राय यह है कि जाग्रत् अवस्था में दक्षिण नेत्र, और स्वप्न में कंठस्थ प्राण, सुषुप्ति में हृदय-कमल; ये तीन स्थान परमात्मा के रहने के हैं ।

पदच्छेदः ।

सः, जातः, भूतानि, अभिव्यैक्षत्, किम्, इह, अन्यम्, वा, अवदिषत्, इति, सः, एतम्, एव, पुरुषम्, ब्रह्म, तत्, तमम्, अपश्यत्, इदम्, अदर्शम्, इति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

सः=वह पुरुष अर्थात् अंतःकरण विशिष्ट चैतन्य आत्मा
जातः=उत्पन्न हुआ
भूतानि=भूतों को
अभिव्यैक्षत्=भली प्रकार विचार करता भया कि
इति=ऐसे
इह=शरीर विषे
अन्यम्=अपने से भिन्न औरों को
किम्=क्या
वा=निश्चय करके
अवदिषत्=कहे
+ **अतः**=इसलिये
एतम् एव=इसही
पुरुषम्=पुरुष को याने अपने आपको ही
तत् तमम्=अत्यंत करके व्याप्त
ब्रह्म=ब्रह्मरूप
अपश्यत्=देखता भया और कहता भया कि
इति=वारंवार इस प्रकार
इदम्=इस ब्रह्म को याने अपने आप को
अदर्शम्=मैं साक्षात् देखता भया ॥

भावार्थ ।

स जात इति ॥ वह परमात्मा देह में प्रवेश करके और जन्म, मरण, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति करके संयुक्त होने के कारण संसारी होता भया, और शास्त्रगुरु के उपदेश करके विचार करता भया कि यह जो दृश्यमान आकाशादि भूत और प्राणी हैं, सो ये सब कहाँ से उत्पन्न होते हैं, और उनकी कौन रक्षा करता है, और किसमें स्थिर रहते हैं, और किसमें लीन हो जाते हैं, विचार के अनंतर ऐसा जानता भया कि जो आत्मा शरीर विषे स्थित है, और जो जीव कहा जाता है, वही ब्रह्म है, वही व्याप्त होकर संपूर्ण दृश्यमान जगत्

का द्रष्टा है, उससे इतर और कोई ब्रह्म नहीं है ॥ १३ । २२ ॥

मूलम् ।

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो हवै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥ १४ । २३ ॥

इति तृतीयःखण्डः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, इदन्द्रः, नाम, इदन्द्रः, हवै, नाम, तम्, इदन्द्रम्, सन्तम्, इन्द्रम्, इति, आचक्षते, परोक्षेण, परोक्षप्रियाः[1], इव, हि, देवाः, परोक्षप्रियाः, इव, हि, देवाः ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तस्मात्	उस कारण से
इदन्द्रः	इदन्द्र नाम
नाम	प्रसिद्ध है परमात्मा
+ च	और
इदन्द्रः	इदन्द्र नाम
हवै	निश्चय करके
नाम	प्रसिद्ध है लोक में
तम्	उस
इदन्द्रम्	इदन्द्र नाम
सन्तम्	होते हुए को
परोक्षेण	परोक्ष से
इन्द्रम्	इन्द्र नाम
इति	करके
आचक्षते	कहते हैं ब्रह्मवेत्ता आचार्य
हि	क्योंकि यह
इव	प्रत्यक्ष है कि
देवाः	पूज्य पुरुष
परोक्षप्रियाः	परोक्ष नाम से प्रसन्न होते हैं ॥

१—"परोक्षप्रियाः इव हि देवाः" इस वाक्य को द्वितीय बार कहने से यह अभिप्राय है कि कही हुई बात सत्य है, और अध्याय की समाप्ति भी है "इदम् द्रः" "इदं पश्यति यः" इसको देखता है जो अर्थात् इस शरीर को जो भली प्रकार से देखता है, वह इदन्द्र है, अर्थात् क्षेत्रज्ञ है, उस इदन्द्र को परोक्षता से अर्थात् भय से या लज्जा से एक अक्षर कम करके "इन्द्र" ऐसा बोलते हैं ।

भावार्थ ।

तस्मादिति ॥ पूर्वोक्त अपरोक्ष दर्शन से इदंद्र नाम परमेश्वर का लोक में भी प्रसिद्ध है ॥

प्र०—श्रुति में परमेश्वर का इन्द्र नाम कहा है ॥

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते ॥

इन्द्र जो परमेश्वर है, सो माया करके बहुत से रूपों को बना लेता है । तब फिर उसका इदंद्र नाम कैसे हो सकता है ?

उ०—इदंद्र में परोक्ष अर्थ का वाचक जो कि दकार अक्षर है उसका लोप करके ब्रह्मवित् पुरुष इदंद्र को इन्द्र नाम करके भी कथन करते हैं, क्योंकि देवता या पूज्यपुरुष परोक्ष या विशेषण करके युक्त नाम के लेने से ही प्रसन्न होते हैं ॥ १४ । २३ ॥

इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

मूलम् ।

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतस्तदे-तत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बि-भर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥ १ । २४ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषे, हवै, अयम्, आदितः, गर्भः, भवति, यत्, एतत्, रेतः, तत्, एतत्, सर्वेभ्यः, अङ्गेभ्यः, तेजः, सम्भूतम्, आत्मनि, एव, आत्मानम्, बिभर्ति, तत्, यदा, स्त्रियाम्, सिञ्चति, अथ, एनम्, जनयति, तत्, अस्य, प्रथमम्, जन्म ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
अयम्	यह स्थूल शरीर
ह्वै	निश्चय करके
पुरुषे	पुरुष बिषे
आदितः	पहले
गर्भः	वीर्यरूप
भवति	होता है
यत्	जो
एतत्	यह
रेतः	वीर्य है
तत्	सो
एतत्	यह
तेजः	साररूप
सर्वेभ्यः अङ्गेभ्यः	अन्नमय पिंड के सब अंगों से
सम्भूतम्	उत्पन्न हुआ
आत्मानम्	शरीर को
आत्मनि	अपने में
एव	निश्चय करके
बिभर्ति	धारण करता है
तत्	उस वीर्य को
यदा	जब ऋतुकाल बिषे
पुरुषः	पुरुष
स्त्रियाम्	स्त्रीरूप अग्नि में
सिञ्चति	सिंचन करता है
अथ	तब
एवम्	इस प्रकार शरीर को
जनयति	उत्पन्न करता है
तस्मात्	उस कारण
अस्य	इस जीव का
तत्	वह सिंचन-कर्म
प्रथमम्	पहिला
जन्म	जन्म है ॥

भावार्थ ।

पुरुषे ह्वे इति ॥ शरीर में दशम द्वार को विदीर्ण करके जिस आत्मा ने प्रवेश किया है और जीवरूप बना है, उसका शरीर पिता के शरीर में प्रथम वीर्यरूप करके गर्भ को प्राप्त होता है, अर्थात् अन्न द्वारा पिता के वीर्य में आकर स्थित होता है, इसलिये यह जो पुरुष के शरीर में वीर्य है, वही संपूर्ण शरीर के अंगों का तेज है, और जो पुरुष वीर्य की रक्षा करता है, उसके मुख की कांति और सौंदर्य औरों से अधिक होता है, क्योंकि वीर्य ही शरीर में सारभूत है। और जो यह कहा है कि अपने को ही अपने में पुरुष धारण करता है, उसका तात्पर्य यह है कि अपने शरीर का सारभूत जो वीर्य है, उस

वीर्य को प्रथम पुरुष अपने में ही गर्भ की तरह धारण करता है। जब ऋतुकाल में पुरुष वीर्य को स्त्री की योनि में सिंचन करता है, तब उस वीर्य को गर्भरूप करके स्त्री धारण करती है, फिर जीवान्तर करके विशिष्ट शरीर को स्त्री उत्पन्न करती है, यह जीव का प्रथम जन्म कहा जाता है ॥

प्र०—**आत्मा वै जायते पुत्रः** ॥ पिता का आत्मा ही पुत्ररूप होकर उत्पन्न होता है, जब श्रुति ऐसा कहती है तब फिर जीवांतर की उत्पत्ति कैसे होती है ?

उ०—श्रुति में जो आत्मशब्द है, वह शरीर का वाचक है, और शरीर का ही सारभूत वीर्य है, वह भी आत्मशब्द करके कहा जाता है, सो वही पिता का अपना आत्मा है, वही पुत्ररूप होकर उत्पन्न होता है, अर्थात् पुत्र का शरीर बनकर उत्पन्न होता है, और जीव उसमें कर्मानुसार देशांतर या लोकांतर से आता है। यदि पिता का आत्मा चेतन पुत्र होकर उत्पन्न होवे, तब वह एक होने के कारण पुत्रोत्पत्ति के समय पिता को मर जाना चाहिये, पर ऐसा तो नहीं होता है, फिर आत्मा निरवयव है, उसके टुकड़े भी नहीं होसक्ते हैं, जोकि थोड़ा सा पुत्ररूप होकर और थोड़ा सा कन्यारूप होकर उत्पन्न होता रहे। यदि पुत्र पिता का आत्मा ही रूप होकर उत्पन्न होवे, तब पिता के बराबर ही पुत्र को होना चाहिये। यदि पिता धनी, निर्धनी, अंधा या बहरा हो, तो वैसा ही पुत्र भी होना चाहिये, सो तो नहीं होता है, और जीव के जन्मांतर का भी अभाव होजावेगा, पशु हमेशा पशुही रहेंगे, मनुष्य सदा मनुष्यही रहेंगे, कर्म का भी लोप होजायगा, इसलिये श्रुति में जो आत्मशब्द है, वह चेतन का वाचक नहीं है, किंतु शरीर का वाचक है ॥ १ । २४ ॥

मूलम् ।

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमङ्गं तथा तस्मादेनां न हिनस्ति साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥ २ । २५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, स्त्रियाः, आत्मभूयम्, गच्छति, यथा, स्वम्, अङ्गम्, तथा, तस्मात्, एनाम्, न, हिनस्ति, सा, अस्य, एतम्, आत्मानम्, अत्र, गतम्, भावयति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

यथा=जैसे
स्वम्=अपना
अंगम्=अंग है
तथा=वैसे
तत्=वह वीर्य
स्त्रियाः=स्त्री के
आत्मभूयम्=आत्मभाव अर्थात् शरीरभाव को
गच्छति=प्राप्त होता है
तस्मात्=उस कारण
एनाम्=इस माता को
तत्=वह वीर्य
न=नहीं
हिनस्ति=पीड़ित करता है
सा=वह गर्भवती स्त्री
अत्र=अपने गर्भरूप आत्मा में
अस्य=इस भर्ता के
एतम्=इस वीर्यरूप
गतम्=प्राप्त हुए
आत्मानम्=आत्मा को
भावयति=पालन पोषण करती है ॥

भावार्थ ।

तत इति ॥ प्र०—जैसे दूसरे का त्यागा हुआ बाल दूसरे के शरीर में लगकर उसके दुःख का हेतु होता है, वैसे ही पुरुष करके त्यागा हुआ वीर्य भी स्त्री के गर्भाशय में प्रवेश करके उसके भी दुःख का ही हेतु होता होगा ?

उ०—जो स्त्री की योनि में प्राप्त हुआ पुरुष का वीर्य है, वह स्त्री

के शरीर का अंग बन जाता है । जैसे अपने शरीर के हाथ-पाद अंग अपने शरीर से भिन्न नहीं होते हैं, इसी प्रकार वह वीर्य भी स्त्री का अंग होकर उसके क्लेश का हेतु नहीं होता है । और वह गर्भवती स्त्री पुरुष करके सिंचन किये हुए वीर्य को अपने शरीर में पुत्ररूप करके अपने खाये हुए अन्नादिकों के रसों से पालन करती है ॥ २ । २५ ॥

मूलम् ।

सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्रीगर्भं बिभर्ति सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति आत्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३ । २६ ॥

पदच्छेदः ।

सा, भावयित्री, भावयितव्या, भवति, तम्, स्त्रीगर्भम्, बिभर्ति, सः, अग्रे, एव, कुमारम्, जन्मनः, अग्रे, अधिभावयति, सः, यत्, कुमारम्, जन्मनः, अग्रे, अधिभावयति, आत्मानम्, एव, तत्, भावयति, एषाम्, लोकानाम्, सन्तत्यै, एवम्, सन्तताः, हि, इमे, लोकाः, तत्, अस्य, द्वितीयम्, जन्म ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+ यावत्=जबतक
स्त्री=स्त्री
तम्=उस
गर्भम्=गर्भ को
बिभर्ति=धारण करती है
+ तावत्=तबतक
सा=वह
भावयित्री=गर्भवती स्त्री

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

भावयितव्या=भर्ताकरके पालन-पोषण करने योग्य
भवति=होती है
एषाम्=इन
लोकानाम्=लोकों की
सन्तत्यै=वृद्धि के अर्थ
सः=वह पिता
अग्रे=पूर्व

एव=ही अर्थात् गर्भ में ही
कुमारम्=बच्चे को
जन्मनः=उत्पत्ति से
अग्रे=पहले
यत्=जो पुंसवनादि
अधिभावयति=संस्कार करता है
च=और
जन्मनः=जन्म के
अग्रे=पीछे
सः=वह पिता
कुमारम्=बालक को
यत्=जो
अधिभावयति=जातकर्मादि सं-
स्कार करता है
तत्=सो
सः=वह पिता
आत्मानम्=अपने को
एव=ही
भावयति=संस्कार करता है
हि=क्योंकि
इमे लोकाः=ये लोक
एवम्=इसी प्रकार
सन्तताः=वृद्धि को प्राप्त
हुए हैं
तत्=तिस लिये
अस्य=इस संसारी
जीव का
इदम्=यह
द्वितीयम्=दूसरा
जन्म=जन्म है ॥

भावार्थ ।

सा भावयित्रीति ॥ जब स्त्री भर्ता के वीर्यरूपी गर्भ की पालना करती है तब भर्ता को भी उचित है कि अपनी स्त्री की अन्न वस्त्रादिकों से पालना करे । स्त्री अपने उदर में स्थित गर्भ की पालना नव या दश महीनों तक बड़े परिश्रम से करती है, और यही माता का पुत्र पर उपकार है, और पिता पुत्र के जन्म लेने से पहले ही पुत्र की सुखपूर्वक उत्पत्ति के लिये अनेक शास्त्रोक्त कर्मों को करता है, और जन्म से उत्तर जात आदि कर्मों को करता है, और पालन-पोषण भी करता है, सो अपनी ही पालन पोषण करता है, क्योंकि पुत्र पिता का ही स्वरूप है, और वंश के चलाने के लिये पुत्र की उत्पत्ति लिखी है, कुछ मोक्ष की प्राप्ति के लिये पुत्र की उत्पत्ति नहीं है, इसलिये पुत्ररूप करके माता के गर्भ से उत्पन्न होना यह इस जीव का दूसरा जन्म है ॥ ३ । २६ ॥

मूलम् ।

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते अथास्यायमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥ ४ । २७ ॥

पदच्छेदः ।

सः, अस्य, अयम्, आत्मा, पुण्येभ्यः कर्मभ्यः, प्रतिधीयते, अथ, अस्य, अयम्, इतरः, आत्मा, कृतकृत्यः, वयोगतः, प्रैति, सः, इतः, प्रयन्, एव, पुनः, जायते, तत्, अस्य, तृतीयम्, जन्म ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

सः=वह
अयम्=यह पुत्र
आत्मा=आत्मारूप
अस्य=इस पिता के स्थान विषे
पुण्येभ्यः=पुण्य
कर्मभ्यः=कर्म करने के अर्थ
प्रतिधीयते=स्थापित किया जाता है
अथ=इसके पीछे
अस्य=इसका पिता
अयम्इतरः=यह दूसरा
आत्मा=शरीर
कृतकृत्यः=कृतकार्य होता हुआ

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

च=और
वयोगतः=वृद्ध होता हुआ
प्रैति=मरण को प्राप्त होता है
च=और
सः=वह लिंगशरीर
इतः=इस लोक से
प्रयन्=गया हुआ
एव पुनः=फिर भी
जायते=उत्पन्न होता है
तत्=सो
अस्य=इस जीव का
तृतीयम्=तीसरा
जन्म=जन्म है ॥

भावार्थ ।

स इति ॥ पिता के दो शरीर होते हैं, एक अपना दूसरा पुत्र का, सो दोनों में से यह जो प्रत्यक्ष पुत्र का देह है, उसको शास्त्रोक्त अग्निहोत्रादिक पुण्यकर्मों के करने के लिये पिता अपनी जगह में

स्थापन करता है, अर्थात् अपना प्रतिनिधि बनाकर पुत्र को अपने गृह में स्थापन करता है ताकि उसके मरण के पश्चात् जिन कर्मों को वह करता था उन्हीं कर्मों को उसका पुत्र भी करे, और फिर पिता आप कृतकृत्य होजाता है, अर्थात् अपने को फिर कृतकृत्य मानता है, और आयुहीन होकर फिर मर भी जाता है, अर्थात् पूर्व के शरीर को त्याग करके वह पिता स्वर्ग में या मनुष्यलोक में कर्माऽनुसार उत्पन्न होता है, और जिस काल में पहले शरीर का त्याग करता है, उसीकाल में मानसदेहान्तर को स्वीकार करके ही इस देह का त्याग करता है ॥ इसीमें श्रुति आपही दृष्टांत को कहती है ॥ **यथा तृणजलौका तृणस्यान्तं गत्वा** ॥ तृणजलौका एक कीट होता है, वह तृण के ऊपरही चलता है, जब वह तृण खतम होजाता है, तब वह इधर-उधर दूसरे तृण के वास्ते देखता है, जबतक कोई दूसरा तृण उसको दिखाई नहीं पड़ता तबतक वह पूर्ववाले तृण का त्याग नहीं करता है । जिस काल में उसको दूसरा तृण सामने दिखाई देता है, तब वह पहिला तृण त्याग करके दूसरे तृणपर चला जाता है, इसी प्रकार यह जीव भी कर्मानुसार जबतक दूसरे शरीर का संकल्प दृढ़ नहीं कर लेता है, तबतक अपने पूर्व शरीर का त्याग नहीं करता है । तात्पर्य यह है कि जिस काल में यह जीव एक शरीर का त्याग करता है उसी काल में ही दूसरे शरीर में जो माता पिता के वीर्य से बना है प्रवेश कर जाता है, और इस जीव का तृतीय जन्म कहा जाता है ॥ ४ । २७ ॥

मूलम् ।

तदुक्तमृषिणा गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वाः शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥ ५ । २८ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उक्तम्, ऋषिणा, गर्भे, नु, सन्, ननु, एषाम्, अवेदम्, अहम्, देवानाम्, जनिमानि, विश्वाः, शतम्, मा, पुरः, आयसीः, अरक्षन्, अधः, श्येनः, जवसा, निरदीयम्, इति, गर्भे, एव, एतत्, शयानः, वामदेवः, एवम्, उवाच ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
गर्भे	गर्भ में
नु	ही
सन्	स्थित होता हुआ
वामदेवः	वामदेव ऋषि
एवम्	इस प्रकार
उवाच	कहता भया कि
ननु	निश्चय करके
अहम्	मैं
एषाम्	इन
देवानाम्	अग्नि आदि देवों के
विश्वाः	संपूर्ण
जनिमानि	जन्मों को
अवेदम्	जानता भया
मा	मुझको
शतम्	अनेक
आयसीः	लोहे के तुल्य बने हुये
पुरः	शरीरें
अधः	अधोगति के प्रति
अरक्षन्	रक्षा करते भये याने अपने अंदर रखते भये
+परन्तु	परंतु
+अथ	अब
अहम्	मैं
श्येनःइति	बाज चिड़िया की तरह
जवसा	वेग से
एतत्	इस
गर्भे एव	गर्भ में ही
शयानः	सोता हुआ
निरदीयम्	ज्ञान वैराग्य के बल करके निकल आया हूँ अर्थात् मुक्त हुआ हूँ
तत्	वही
ऋषिणा	मंत्र करके
उक्तम्	कहा गया है ॥

भावार्थ ।

तदुक्तमिति ॥ पहले जिस निंदित संसार का स्वरूप दिखलाया गया है, उसका नाश विना आत्मज्ञान के नहीं होसकता है, और

आत्मज्ञान करके ही उसकी निवृत्ति होसकती है । अब संसार की निवृत्ति दिखलाने के लिये वामदेवजी कहते हैं, कि मैं माता के गर्भ में ही बसता हुआ अग्नि वायु आदिक देवताओं के जन्मों को परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ जानता भया, और आत्मज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व में सैकड़ों जन्मों के कारागाररूपी शरीरों में बंधायमान होता रहा। जैसे चोर कारागार में कैद किया जाता है वैसे मैं भी शरीरों में कैद रहा, और जैसे बाज चिड़िया जाल को काट करके वेग से निकल जाता है, वैसे मैं भी संसाररूपी जाल को काट करके निकल गया हूँ । इसप्रकार माता के गर्भ में स्थित होते हुए भी वामदेवजी कहते भये ॥ ५ । २८ ॥

मूलम् ।

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥ ६ । २९ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एवम्, विद्वान्, अस्मात्, शरीरभेदात्, ऊर्ध्वः, उत्क्रम्य, अमुष्मिन्, स्वर्गे, लोके, सर्वान्, कामान्, आप्त्वा, अमृतः, समभवत्, समभवत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
एवम्	इस प्रकार
सः	वह
विद्वान्	विद्वान् वामदेव
अस्मात्	इस
शरीरभेदात्	शरीर नाश के पीछे
ऊर्ध्वः	ऊर्ध्वगति को होताहुआ
उत्क्रम्य	अधोगति को उल्लंघन करके
अमुष्मिन्	इस
स्वर्गे	ब्रह्मानंदरूप
लोके	स्वर्गलोक में
सर्वान्	संपूर्ण
कामान्	कामनाओं को
आप्त्वा	प्राप्त होकर
अमृतः	जन्म मरणरहित
समभवत्	होता भया ॥

भावार्थ ।

स एवमिति ॥ सो वामदेवजी आत्मतत्त्व को जानते हुये प्रारब्धकर्म के क्षीण होने पर इस वर्त्तमान शरीर के नाश के अनंतर परब्रह्मरूप होकर इस संसार से निवृत्त होकर पश्चात् स्वप्रकाश आनंदरूप ब्रह्म में प्रवेश करते भये ॥ ६ । २९ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

मूलम् ।

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा येन वा रूपम्पश्यति येन वा शब्दं शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥ १ । ३० ॥

पदच्छेदः ।

कः, अयम्, आत्मा, इति, वयम्, उपास्महे, कतरः, सः, आत्मा, येन, वा, रूपम्, पश्यति, येन, वा, शब्दम्, शृणोति, येन, वा, गन्धान्, आजिघ्रति, येन, वा, वाचम्, व्याकरोति, येन, वा, स्वादु, च, अस्वादु, च, विजानाति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

कः=कौन
अयम्=यह
आत्मा=आत्मा है
+ यम्=जिसको
वयम्=हमलोग
इति=इस प्रकार
उपास्महे=उपासना करें

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

कतरः=कौन
सः=वह
आत्मा=आत्मा है
येन=जिस करके
वा=ही
पुरुषः=पुरुष
रूपम्=रूप को

पश्यति=देखता है
येन=जिस करके
वा=ही
शब्दम्=शब्द को
शृणोति=सुनता है
येन=जिस करके
वा=ही
गन्धान्=गंधों को
आजिघ्रति=सूँघता है
येन=जिस करके
वा=ही
वाचम्=वाणी को
व्याकरोति=प्रकट करता है
च=और
येन=जिस करके
वा=ही
स्वादु=स्वादु को
च=अथवा
अस्वादु=अस्वादु को
विजानाति=अनुभव करता है ॥

भावार्थ ।

कोऽयमिति ॥ यह जो अहं प्रत्यय का विषय आत्मा है और जिसकी उपासना करके वामदेव ऋषि अमर होजाते भये, उसी आत्मा के जानने की जिज्ञासा करके इतर पुरुष परस्पर पूछते हैं ॥

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । इस श्रुति में निरुपाधिक आत्मा का श्रवण है ॥

स एतमेव सीमानं विदार्य्य । इस दूसरी श्रुति में सोपाधिक आत्मा का श्रवण है, इन दोनों सोपाधिक निरुपाधिक आत्मा के मध्य में प्रत्यग् चेतन आत्मा कौन है, अर्थात् सोपाधिक है या निरुपाधिक है, जिसकी हम उपासना करें । यद्यपि अहं प्रत्यय करके गम्य चेतन आत्मा का सामान्यरूप प्रसिद्ध है, जैसे काष्ठादिक में अग्नि, परंतु जो विशेषरूप आत्मा है, और जो अप्रकट है उसको अब हम कहते हैं, सुनो जैसे पात्रों के जलों में सूर्य का प्रतिबिंब पृथक् पृथक् प्रतीत होता है वैसे ही बाह्य करण जो इन्द्रिय हैं, उनमें भी पृथक् चेतन का प्रतिबिंब विशेषरूप से अभिव्यक्त होता है । जिस चक्षु इन्द्रिय करके अभिव्यक्त जो चेतन है और जिस चेतन करके देह इन्द्रियादि संघात का अभिमानी लौकिक पुरुष रूप को देखता है, वही चेतन आत्मा है ।

जिस श्रोत्रेन्द्रिय करके अभिव्यक्त चेतन द्वारा पुरुष शब्द का अनुभव करता है वही चेतन आत्मा है । जिस घ्राणेन्द्रिय करके अभिव्यक्त चेतन द्वारा सुरभि असुरभि गंधों को सूँघता है वही चेतन आत्मा है। जिस वागिन्द्रिय करके अभिव्यक्त चेतन द्वारा बोलचाल का व्यवहार पुरुष करता है वही चेतन आत्मा है, और जो रसना इन्द्रिय करके अभिव्यक्त चेतन स्वादु.अस्वादु को जानता है वही चेतन आत्मा है ॥ १ । ३० ॥

मूलम् ।

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ । ३१ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, एतत्, हृदयम्, मनः, च, एतत्, सञ्ज्ञानम्, आज्ञानम्, विज्ञानम्, प्रज्ञानम्, मेधा, दृष्टिः, धृतिः, मतिः, मनीषा, जूतिः, स्मृतिः, सङ्कल्पः, क्रतुः, असुः, कामः, वशः, इति, सर्वाणि, एव, एतानि, प्रज्ञानस्य, नामधेयानि, भवन्ति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

यत्=जो
एतत्=यह
हृदयम्=हृदय है
च=वही
एतत्=यह
मनः=मन है
सञ्ज्ञानम्=सम्यक् ज्ञप्तिरूप चैतन्य भाव

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

आज्ञानम्=सब ओर से ज्ञप्तिरूप ईश्वर भाव
विज्ञानम्=चौंसठ कला अर्थात् विद्या से जन्य लौकिक व्यवहारज्ञान
प्रज्ञानम्=तत्काल जन्य भावरूप ज्ञान
मेधा=ग्रंथार्थधारण की शक्ति का ज्ञान

दृष्टिः=इन्द्रिय द्वारा सर्वविषयों का ज्ञान

धृतिः=वह ज्ञान-शक्ति जिस करके शरीर की शिथिलता सावधान कीजावे

मतिः=वह ज्ञान-शक्ति जिस करके मनन अर्थात् विचार किया जावे

मनीषा=मनन-जन्य स्वतन्त्रता या मन का नियामकपना जिस ज्ञानशक्ति कर के सिद्ध हो

जूतिः=जिस ज्ञान-शक्ति कर के चित्त के रोगादि-निमित्त से दुःखित होना हो

स्मृतिः=स्मरण-ज्ञान

संकल्पः=जिस ज्ञान-शक्ति कर के रूपादिकों का शुक्ल कृष्णादि भाव से कल्पना की जावे

क्रतुः=निश्चय करने का ज्ञान

असुः=वह ज्ञान-शक्ति जिस करके प्राण-धारण करने का उद्यम किया जाय

कामः=वह ज्ञान-शक्ति जिस करके दूर स्थित वस्तु की इच्छा की जावे

वशः=वह शक्ति जिस कर के स्त्री-संगादिकों की इच्छा हो

इति=इसप्रकार

एतानि=ये

सर्वाणि=सब

प्रज्ञानस्य=ज्ञान के

एव=ही

नामधेयानि=नाम

भवन्ति=हैं ॥

भावार्थ ।

यदेतदिति ॥ मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जो अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं, और उनमें जो प्रतिबिंबित ज्ञानस्वरूप चेतन है, उसके संबंध से सब वृत्तियाँ अनेक प्रकार के ज्ञानशक्ति का धारण करती हैं, उन्हीं को दिखलाते हैं ॥ सञ्ज्ञानम् ॥ चेतन आत्मा-विषयक ज्ञान ॥ आज्ञानम् ॥ ईश्वर-विषयक ज्ञान ॥ विज्ञानम् ॥ विद्या-जन्य लौकिक व्यवहार-ज्ञान ॥ प्रज्ञानम् ॥ तत्कालजन्य भावरूप ज्ञान ॥ मेधा ॥ यथार्थ धारण की शक्तिज्ञान ॥ दृष्टिः ॥ चक्षु इन्द्रिय द्वारा सब विषयों की उपलब्धि का ज्ञान ॥ धृतिः ॥ शरीर इन्द्रियों का रक्षक ज्ञान ॥

मतिः ॥ राजसंबंधी कामों का विचार करनेवाला ज्ञान ॥ मनीषा ॥ शास्त्र के विचार करने का ज्ञान ॥ जूतिः ॥ रोगादिजन्य दुःखाकार वृत्ति का ज्ञान ॥ स्मृतिः ॥ अनुभूत वस्तु के स्मरण का ज्ञान ॥ कल्पः ॥ सामान्यरूप करके जाने गये जो कि शुक्लादिरूप उनके विशेषरूप का ज्ञान ॥ क्रतुः ॥ इसको मैं अवश्यही करलेऊँगा ऐसा निश्चय ज्ञान ॥ असुः ॥ प्राणादि क्रियाका ज्ञान ॥ कामः ॥ अप्राप्त विषय की इच्छा स्त्रीसंसर्ग की इच्छादि जितनी अंतःकरण की वृत्तियाँ हैं इनसे आत्मा भिन्न है, और पूर्वोक्त संपूर्ण वृत्तियों में आत्मा प्रतिबिंबित स्थित है इसालिये यह सब तद्वृत्त्युपाधि को द्वार करके लक्षित जो चेतन है उसी के नाम हैं, उपाधि से रहित के ये सब नाम नहीं हैं ॥ २ । ३१ ॥

मूलम् ।

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषी-त्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जरायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणिजङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम् सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम् प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठिता प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ३ । ३२ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, ब्रह्म, एषः, इन्द्रः, एषः, प्रजापतिः, एते, सर्वे, देवाः, इमानि, च, पञ्चमहाभूतानि, पृथिवी, वायुः, आकाशः, आपः, ज्योतींषि, इति, एतानि, इमानि, च, क्षुद्रामिश्राणि, इव, बीजानि, इतराणि, च, इतराणि, च, अण्डजानि, च, जरायुजानि, च, स्वेदजानि, च, उ-

द्विज्जानि, च, अश्वाः, गावः, पुरुषाः, हस्तिनः, यत्किञ्च, इदम्, प्राणिजङ्गमम्, च, पतत्रि, च, यच्च, स्थावरम्, सर्वम्, तत्, प्रज्ञानेत्रम्, प्रज्ञाने, प्रतिष्ठितम्, प्रज्ञानेत्रः, लोकः, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता, प्रज्ञानम्, ब्रह्म ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
एषः	यह प्रज्ञानरूपात्मा
ब्रह्म	ब्रह्म है
+ च	और
एषः	यही
इन्द्रः	इन्द्र है
च	और
एषः	यही
प्रजापतिः	प्रजापति है
च	और
सर्वे	सब
एते	ये
देवाः	अग्न्यादि देवता
ब्रह्म	ब्रह्म हैं
+ च	और
पञ्चमहाभूतानि	पञ्चमहाभूत अर्थात
पृथिवी	पृथिवी
वायुः	वायु
आकाशः	आकाश
आपः	जल
ज्योतींषि	तेज
इमानि	ये सब
ब्रह्म	ब्रह्म हैं
च	और
क्षुद्रमिश्राणि	सर्पादिक कीड़े मकोड़े
अपि	भी
च	और
बीजानि	कारण
इतराणि	कार्य
च	और
इतराणि	अलावा इनके
अण्डजानि	अण्डा से उत्पन्न हुये पक्षी आदि
च	और
जरायुजानि	जरायुज सृष्टि अर्थात् नृगवादि (नरगऊ आदि)
च	और
स्वेदजानि	स्वेदज याने पसीने से है उत्पत्ति जिनकी । जैसे कीड़े, मच्छर आदि
च	और

उद्भिज्जानि=उद्भिज्ज सृष्टि अर्थात् जो पृथिवी को फोड़ कर उत्पन्न होते हैं जैसे वृक्ष वल्ली आदि
इमानि=ये सब
ब्रह्म=ब्रह्म ही हैं
च=और
अश्वाः=घोड़े
गावः=गऊ और बैल
पुरुषाः=मनुष्य
हस्तिनः=हाथी
च=और
यत्किञ्च=जो कुछ
इदम्=यह दृश्यमान
प्राणि-जङ्गमम्=प्राणवाला चर जीव है
च=और
पतत्रि=परवाला
च=और
यत्=जो
स्थावरम्=अचर पदार्थ है अर्थात् स्थिर वृक्षादि
तत्=सो
सर्वम्=सब
प्रज्ञानेत्रम्=प्रज्ञान रूप नेत्र वाला
च=और
प्रज्ञाने=प्रज्ञान विषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
च=और
लोकः=लोक
प्रज्ञानेत्रः=प्रज्ञानेत्र है
च=और
प्रज्ञा=प्रज्ञा
जगतः=जगत् का
प्रतिष्ठा=आश्रयभूत है
तस्मात्=तिस कारण
प्रज्ञानम्=प्रज्ञान
एव=ही
ब्रह्म=परब्रह्म है ॥

भावार्थ ।

एष इति ॥ पूर्ववाले मंत्र करके त्वं पद के अर्थ को दिखलाया है, अब इस मंत्र करके तत्पदके अर्थ को दिखलाते हैं ॥ एषः ॥ यह जो हिरण्यगर्भ प्रथम शरीरी कहा गया है, सो संपूर्ण व्यष्टि लिंगशरीरों का अभिमानी है । यह जो देवतों का राजा इन्द्र है, यह जो शास्त्र प्रसिद्ध समष्टि स्थूल शरीरों का अभिमानी विराट् है, यह जो अग्नि वायु आदिक जितने देवता हैं, और जितने वागादि इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवता हैं, और यह जो प्रसिद्ध पाँच महाभूत स्थूल हैं,

(अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश) ये सब ब्रह्मही हैं, यह जो क्षुद्र मशकादिकों से लेकर मनुष्यादिकों के शरीर हैं और कारण कार्य जितने भूत हैं, सब ब्रह्मरूप हैं, और जितने जीव अंडज[1], जरायुज[2], स्वेदज[3], उद्भिज्ज[4] हैं, सब ब्रह्मरूपही हैं, जितने स्थावर जंगम जीव हिरण्यगर्भ से लेकर स्थावर पर्यंत हैं, सब प्रज्ञानेत्र हैं, प्रज्ञा जो बुद्धि है वही है नेत्र जिनका उनका नाम है प्रज्ञानेत्र, और प्रज्ञान नाम ब्रह्म का भी है, उसी में है स्थिति जिनकी, जैसे शुक्ति में रजत आरोपित है वैसे, यह संपूर्ण ब्रह्म में आरोपित है, अर्थात् कल्पित है और ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म चेतनही है व्यवहार का कारण जिनका उनका नाम प्रज्ञानेत्र है, और ब्रह्म चेतन में ही है स्थिति जिनकी उनका नाम है प्रज्ञा प्रतिष्ठा, उत्पत्ति स्थिति और लय का स्थान सबका चेतन ही है, चेतन से भिन्न जगत् की अपनी सत्ता कुछ भी नहीं है ॥ प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही है, जो प्रश्न था कि वह आत्मा कौन है उसका यह उत्तर है कि आत्मा प्रज्ञानस्वरूप है ॥ ३ । ३२ ॥

मूलम् ।

स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माँल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाऽप्त्वाऽऽमृतः समभवत् समभवत् इत्योम् ॥ ४ । ३३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एतेन, प्रज्ञेन, आत्मना, अस्मात्, लोकात्, उत्क्रम्य, अमुष्मिन्, स्वर्गे, लोके, सर्वान्, कामान्, आप्त्वा, अमृतः, समभवत्, समभवत्, इति, ओम् ॥

१-अंडा से पैदा हों सर्प, पक्षी आदि २-झिल्ली फाड़कर उत्पन्न हों मनुष्य, गौ आदि ३—पसीने से उत्पन्न हों जुवाँ आदि ४—पृथिवी में पैदा हों वृक्ष आदि ।

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
सः=वह वामदेवऋषि	
एतेन=इस	
प्रज्ञेन=ज्ञानस्वरूप	
आत्मना=आत्मा करके	
अस्मात्=इस	
लोकात्=लोक से	
उत्क्रम्य=देह त्याग कर	
अमुष्मिन्=उस ब्रह्मानंद	

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
स्वर्गे=स्वर्ग	
लोके=लोक में	
सर्वान्=सम्पूर्ण	
कामान्=कामनाओं को	
आप्त्वा=प्राप्त होकर	
अमृतः=जन्म-मरण-रहित	
समभवत्=होता भया	
समभवत्=होता भया ॥	

भावार्थ ।

पूर्ववाले मंत्र में जीवात्मा के साथ ब्रह्मात्मा की एकता को कहा है, अब इस मंत्र में उसके फल को कहते हैं ॥

स एतेनेति ॥ वामदेव ऋषि प्रत्यग् चेतनरूप करके ब्रह्म को जान गया इसलिये वह देह से उत्क्रमण करके और देह में आत्मभाव को त्याग करके स्वप्रकाशस्वरूप आनंद ब्रह्ममें प्राप्त होगया ॥ ४ । ३३ ॥

इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इति ऐतरेयोपनिषत्सटीका समाप्ता ।

ॐ तत्सत् ॥